क्या तुझे भव भ्रमण का भय नहीं है ?

सर्वज्ञस्वभावी होते हुए भी अपने निजस्वभाव के भान बिना अनन्त भूतकाल से इसने दया-दान व्रतादि के राग को अपनी चीज माना। इन्हें लाभप्रद माना, इन्हें अपना कर्तव्य माना। बस यही इसका अज्ञान है। इस अज्ञान से ही बन्ध होता है। इसके विपरीत ज्ञाता-दृष्टारूप ज्ञानभाव अबन्धरूप है।

बस यहाँ यही सिद्ध किया गया है कि यह अज्ञानभाव ही बन्ध है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का पिण्ड त्रिकाल एक ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी वस्तु है। उसे दृष्टि में अपने रूप स्वीकार करना ज्ञानभाव है और यही आत्मज्ञान अबन्धरूप है।

अहा ! अपनी ऐसी त्रिकाल विद्यमान वस्तु को न मानकर, स्वीकार न करके उसे अन्यथा मान लेना आत्मघात है। यही भावहिंसा है। इसी से जीव को बन्ध होता है, जो कि चार गति में रखड़ने का कारण है।

बापू ! यह बात इस समय नहीं समझोगे तो फिर ऐसा सुअवसर कब प्राप्त होगा, अभी तो एकसाथ सब बनाव बन गये हैं।

छहढाला में पण्डित दौलतरामजी करुणा करके कहते हैं –

यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनवो जिनवाणी।
इह विध गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी।।

भाई ! यह देह तो देखते ही देखते छूट जायेगी और हमारा आत्मा स्वरूप के भान बिना कहाँ चला जायेगा, हम भवसमुद्र में कहाँ समा जायेगें। पता नहीं चलेगा।

यहाँ बड़े करोड़पति सेठ हैं; परन्तु यदि रागादि की ममता में ही देह छूट गई तो मरकर पशु हो जायेगें, कीड़े-मकोंड़ों की किसी ऐसी तुच्छ पर्याय में चले जायेंगे। जिसे कोई जीव मानने को भी तैयार नहीं होता। पैरों तले रोंध दिये जायेंगे। क्या तुझे भवभ्रमण से जरा भी भय नहीं लगता।

यदि सचमुच संसार से भय लगा है तो अपनी इस अज्ञान की मान्यता को छोड़ो। स्वरूप के भान बिना, सम्यग्दर्शन बिना महाव्रतादि राग की क्रिया को अपनी (आत्मा) की क्रिया मानना अज्ञान है। इस अज्ञान का सेवन करते-करते कभी भव का अंत नहीं आयेगा। **– प्रवचन रत्नाकर भाग – 9, पृष्ठ – 38,39**

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 21 241 अंक : 1

द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सप्ततत्त्व-नवपदार्थ अधिकार

बंध आस्रव पुण्य-पापरु मोक्ष संवर निर्जरा।
विशेष जीव अजीव के संक्षेप में उनको कहें।।२८।।
कर्म आना द्रव्य आस्रव जीव के जिस भाव से।
हो कर्म आस्रव भाव वे ही भाव आस्रव जानिये।।२९।।
मिथ्यात्व-अविरति पाँच-पाँचरु पंचदश परमाद हैं।
त्रय योग चार कषाय ये सब आस्रवों के भेद हैं।।३०।।
ज्ञानावरण आदिक करम के योग्य पुद्गल आगमन।
है द्रव्य आस्रव विविधविध जो कहा जिनवर देव ने।।३१।।
जिस भाव से हो कर्मबंधन भावबंध है भाव वह।
द्रवबंध बंधन प्रदेशों का आतमा अर कर्म के।।३२।।
बंध चार प्रकार प्रकृति प्रदेश थिति अनुभाग ये।
योग से प्रकृति प्रदेश अनुभाग थिती कषाय से।।३३।।
कर्म रुकना द्रव्यसंवर और उसके हेतु जो।
शुद्धातमा के भाव वे ही भावसंवर जानिये।।३४।।
व्रत समिति गुप्ती धर्म परिषहजय तथा अनुप्रेक्षा।
चारित्र भेद अनेक वे सब भावसंवररूप हैं।।३५।।

आत्मा योगियों द्वारा जाना गया है

पूज्यपाद आचार्य देवनन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 21 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्यय:।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकन: ।।21।।

आत्मा लोक और अलोक को देखने–जाननेवाला, अत्यन्त अनन्तसुख स्वभाववाला, शरीरप्रमाण, नित्य है तथा स्वसंवेदन से योगिजनों द्वारा अच्छीतरह अनुभव में आया हुआ है।

(गतांक से आगे)

जिसप्रकार दर्पण में सामने उपस्थित समस्त पदार्थ दिखाई देते हैं; उसीप्रकार इस चैतन्य दर्पण में सम्पूर्ण लोक और अलोक को एकसाथ जानने की शक्ति है। जबतक यह जीव स्वयं की चैतन्य ज्योति को स्वसंवेदन में नहीं लेता; तबतक चार गति के भ्रमण का अंत नहीं आता। यह ज्ञानानन्द आत्मा अनन्त सौख्यवान है। भाई ! उसका विश्वास कर ! तुझमें जैसा आनन्द है, वैसा आनन्द स्वर्ग में इन्द्र के सिंहासन पर भी नहीं है। जिसका स्वभाव स्वत: सुख और आनन्दस्वरूप है, तब उसकी सीमा क्या होगी ? स्वभाव की मर्यादा क्या ? यह तो अमर्याद स्वभाव सुख का भण्डार है – ऐसे आत्मा की अनन्तकाल से कीमत नहीं की और देह की कीमत करता आया है; परन्तु भाई ! यह देह तो प्रत्यक्ष भिन्न है। यह तुम्हारे साथ हमेशा रहनेवाला नहीं है। तुम्हारे साथ तो तुम्हारी भूल रहती है, जिससे तुझे दु:ख होता है; इसलिए तू प्रथम ही उस भूल को भगाने का प्रयास कर ! सर्वज्ञदेव कहते हैं कि स्वसंवेदन ही एक मात्र उस भूल को भगाने का उपाय है, उसे प्रगट कर !

स्वसंवेदन से आत्मा को प्रत्यक्ष कर, तो तुम्हारे जन्म–मरण का अंत आ जायेगा। भाई ! तू जड़ की चिंता छोड़ दे। जड़ में थोड़ा भी फेरफार करने की शक्ति तुझमें नहीं है। तू जड़ का अधिकारी नहीं है। स्वसंवेदन से आत्मा को प्रगट करने में ही तुम्हारा अधिकार है, उसे प्रगट कर न ! जिसमें तुम्हारा अधिकार है, उसे तू हाथ में लेता नहीं और जड़ का

अधिकारी बना रहता है, यही तुम्हारी मूर्खता है। मैं करूँ, मैं करूँ – ऐसी मान्यता ही अज्ञान है। यह मान्यता तो जैसे कुत्ता ऐसा मानता है कि गाड़ी के भार को मैं ढोता हूँ – ऐसी है।

जैसे कच्चे चने को सेंकने से स्वाद मीठा आता है और उसे बोने से वह उगता नहीं; वैसे ही आत्मा का भान होते ही जन्म-मरण का अंकुश नाश को प्राप्त हो जाता है; तब आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है और फिर जन्म-मरण का अभाव हो जाता है – ऐसा सर्वज्ञ भगवान कहते हैं; इसलिए आत्मा को पहचानो, मनन करो, विचार करो एवं बारंबार सत्समागम करो, यही मनुष्य जन्म की सफलता है और यही प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

यहाँ शिष्य प्रश्न पूँछता है कि प्रभु ! आपने कहा कि इस जगत में मोक्षार्थी को – हितार्थी को एक आत्मा का ही ध्यान करने योग्य है। तो यह आत्मा कैसा है ? उसका स्वरूप कैसा है ? कृपा करके यह मुझे समझाइये।

शिष्य के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि आत्मा लोकालोक को जानने की शक्तिवाला है। इस जगत में 14 राजू लोक और खाली अनन्त अलोक है, उसे साक्षात् जानने की शक्ति एक आत्मपदार्थ में ही है। स्वयं की सत्ता के अतिरिक्त जगत में दूसरे अनन्त पदार्थों की भी सत्ता है, उन अनन्त पदार्थों को आत्मा जाननेवाला है। आत्मा लोकालोक को जाने, उसे तो स्वीकार करते हैं; परन्तु वह लोकालोक को बनावे, यह आत्मा के स्वरूप में नहीं है।

राग को करूँ, पर को करूँ – यह आत्मा के स्वरूप में है ही नहीं। अरे ! लोकालोक है; इसलिए आत्मा जानता है – ऐसा नहीं है। लोकालोक को जाने – ऐसा आत्मा का स्वत: स्वभाव है।

आचार्य ने गाथा-20 में आत्मा को चिंतामणी कहकर वर्णित किया और उसका ध्यान करनेयोग्य कहा। तब शिष्य ने प्रश्न उठाया कि यह आत्मा है कैसा ? उससे मुनिराज कहते हैं कि आत्मा स्वभाव से लोकालोक को जाननेवाला है। वह ज्ञान लोकालोक के कारण होता हो – ऐसा नहीं है। अहाहा ! सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात कौन कहे ?

आत्मा अनन्त सुखस्वभावी है। ज्ञान तो लोकालोक प्रमाण है; परन्तु सुख कितना ? तो कहते हैं सुख अनन्त है। जो स्वभाव है, उसकी सीमा क्या ? आत्मा नित्य आनन्द स्वरूप है। फिर भी पर्याय में विकृतभाव करके दु:खी होता है, यह दु:ख तो पर्याय में है, स्वभाव में दु:ख है ही नहीं। स्वाभाविक अनन्त आनन्द की सत्ता का धारक आत्मा ही है।

यहाँ कोई कहे इतना ज्ञान और आनन्द आत्मा की सत्ता में है, तो आत्मा की क्षेत्र-

व्यापकता कितनी है ? लोकप्रमाण है क्या ?

उससे कहते हैं कि आत्मा की शक्ति को क्षेत्र की अमापता की जरूरत नहीं, भाव की अमापता देखो ! आत्मा का क्षेत्र तो शरीर प्रमाण ही है, उसके लिए ध्यान में शरीर जितने आत्मा के क्षेत्र में ही एकाग्रता करनी है, उसमें सम्पूर्ण स्वरूप समा जाता है। असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा शरीर प्रमाण है। इतने क्षेत्र में बहुत ज्ञान-आनन्द का भण्डार है, अनन्त शक्तियों का संग्रह है।

आत्मा नित्य है, विनाशीक नहीं। अनन्तज्ञान और अनन्तसुख उसका स्वभाव है। वह शरीर प्रमाण है तथा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। स्वयं के ज्ञान की पर्याय से वेदने लायक है। स्वयं के ज्ञान में अनुभवगम्य है – ऐसा ही आत्मा का स्वरूप है। राग और निमित्त से जाना जाए – ऐसा उसका स्वरूप है ही नहीं। इस आत्मा के स्वरूप को जाने बगैर उसका ध्यान तो शशविषाणवत् अर्थात् खरगोश के सींग जैसा है। आत्मा को जानने के लिए राग की, पाँच इन्द्रिय की या मन के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं, वह तो सीधा ज्ञान की पर्याय में अनुभव में आवे – ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे वस्तु के स्वरूप को यथार्थ जाने बगैर ध्यान वास्तविक ध्यान नहीं।

देखो, यह इष्टोपदेश ! स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता होकर अनुभव कर सके – ऐसी शक्ति का सत्त्व है। ज्ञेय को जानने के लिए या ज्ञाता को जानने के लिए दूसरे की जरूरत पड़े – ऐसी पराधीनता वस्तु के स्वरूप में ही नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा के स्वरूप को जैसा जाना है, वैसा ही कहा है।

ज्ञान, आनन्द, प्रभुत्व, विभुत्व, प्रकाश, स्वच्छत्व आदि अनन्तगुणों का पिण्ड आत्मा स्वयं ही भाव अर्थात् पर्याय द्वारा जाना जाता है। भावद्वारा ही भाववान जाना जाता है – ऐसा इसका स्वरूप है। यहाँ भाव अर्थात् पर्याय समझना। स्वयं ही ज्ञाता होकर स्वयं को ज्ञेय बनाकर अनुभव करे, उसमें तुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं। स्वयं की पर्याय सीधी स्वसंवेदन करती है। सीधी अर्थात् विकल्प या रागादि की सहायता के बिना सीधा आत्मा को ग्रहण कर लेता है। यह ही अनुभव की विधि है। यदि उसमें किसी प्रकार का फेरफार माने तो आत्मा हाथ आनेवाला नहीं है।

पूज्यपाद स्वामी ने ढिंढोरा पीटकर इष्टोपदेश जगत के सामने जाहिर किया है। यह कोई गुप्त रखने की चीज नहीं है। बाहर की रुचिवाले को पूज्यपाद उमास्वामी कहते हैं कि आठ वर्ष की बालिका हो या 100 वर्ष की बुड़िया हो दोनों के ही आत्मा है, शरीर में भले

ही अंतर हो; परन्तु शरीर के साथ आत्मा का कोई संबन्ध नहीं।

आत्मा को लोकालोक का ज्ञाता कहा; परन्तु लोक कितना है ? तो कहते हैं कि लोक अर्थात् जिसमें अनन्त जीव, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, असंख्य कालाणु और लोकाकाश से भरा हुआ है, वह लोक है। जितने क्षेत्र में छह द्रव्य रहते हैं, वह तो लोक है और उसके अलावा बाकी आकाश, वह अलोक है। छह द्रव्यों से भरा हुआ ही लोक का अस्तित्व है और जहाँ द्रव्यों का अभाव है, वह अनन्त-अमाप आकाश अलोकाकाश है। इसप्रकार इन छह द्रव्यों को उनके भेद-प्रभेद सहित, गुण-पर्याय सहित जाननेवाला आत्मा का सहज स्वभाव है।

जीवों ने अध्यात्म शास्त्रों को पढ़ा नहीं और व्यवहार शास्त्रों का रस बहुत है; परन्तु उससे आत्मतत्त्व हाथ नहीं आता। अरे ! आत्मतत्त्व का माहात्म्य कैसा है, उसका जीव को भान नहीं है ।

बाहर के साधन से आत्मा समझ में नहीं आता। स्वयं के ही ज्ञान से उसकी सत्ता का अनुभव होता है - ऐसा आत्मा का स्वयं का स्वभाव है। यदि उसको पर के द्वारा जाननेवाला माने तो आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

आत्मा निरुपाधि स्वभाववाला है। जानने में उपाधि लगती है - ऐसा माननेवाले को आत्मा के ज्ञानगुण की खबर ही नहीं। योगदर्शन में कहते हैं कि बुद्धि और सुख जिसमें नहीं वह आत्मा है। उसकी बात का यहाँ खण्डन करते हैं। बुद्धि और सुख जिसमें है, वही आत्मा है।

देखो ! आत्मा ... आत्मा तो बहुत धर्मवाला कहता है; परन्तु आत्मा कैसा है ? कौन है ? उसकी खबर नहीं। स्वयं की पूँजी कितनी है, उसकी जिसे खबर नहीं, उसके हाथ में आत्मा आनेवाला नहीं है।

भगवान आत्मा अनन्तसुखस्वरूप है। जैसे चौकी पर मोहनथाल (मिष्ठानयुक्त थाली) है; वैसे ही प्रभु ! तुम्हारी आत्मा की असंख्य प्रदेशी चौकी में अनन्त आनन्द का थाल पड़ा हुआ है, उसमें एकाग्रता करने की तुम्हारी स्वयं की ताकत है। भाई ! करने जैसा तो यही है। असंख्यप्रदेशी चौकी में दलदार (बहुत अधिक)आनन्द का थाल रखा हुआ है कि जिसमें दु:ख की गंध नहीं, राग का स्पर्श नहीं और जिससे शरीर का संबन्ध नहीं । यदि तुझे सुखी होना हो तो आत्मा को अनुभव में ला । **(क्रमश:)**

सत्क्रिया करे तो मोक्ष हुये बिना न रहे

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार नामक ग्रन्थराज पर मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक अत्यन्त गम्भीर संस्कृत टीका लिखी है।

उक्त संस्कृत टीका के मंगलाचरण के **सातवें श्लोक** पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

लोग कुछ क्रिया करना चाहते हैं तो यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि इस शास्त्र में प्रत्याख्यान, भक्ति आदि सत्क्रियाओं का वर्णन करेंगे - ऐसी सत्क्रिया जीव ने कभी नहीं की है । श्रीमद् रायचन्द्रजी कहते हैं -

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाह लिह्यो।
बनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सुतार भयो।
जप भेद जपे तप त्योंहि तपे, उरसें ही उदासी लही सब पै।।
सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये।
बहु साधन बार अनंत कियो, तदपी कछु हाथ हजू न पर्‌यो।।
अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से ?
बिन सद्‌गुरु कोय न भेद लहै, मुख आगल हैं वह बात कहै ?

आत्मभान बिन सब कुछ किया; किन्तु उसको भगवान सत्क्रिया नहीं कहते। अन्तर में चैतन्यस्वभाव पड़ा है। उसके आश्रय से होनेवाली क्रिया ही सत्क्रिया है। शास्त्र ज्ञान किया और त्यागी होकर वन में वास किया, उससे पुण्य बांधकर स्वर्ग में गया और स्वर्ग में से निकलकर पुन: चार गतियों में पड़ा, इसलिये वह सत्क्रिया नहीं है। जिनशासन में कथित सत्क्रिया करे तो मोक्ष हुए बिना नहीं रहे । छहढाला में भी कहा है -

मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।

सभी सन्तों ने यही बात कही है।

यहाँ टीकाकार मुनिराज इस नियमसार परमागम का उपोद्घात करते हुये कहते हैं कि सूत्रकार भगवान ने इस शास्त्र में सत्क्रियाओं का वर्णन किया है। सत्क्रिया किसको कहें ? जिससे मोक्ष प्राप्त हो उसे सत्क्रिया कहते हैं और वह कैसी होती है, उसका इस शास्त्र में वर्णन है। जो सत्क्रिया अनन्तकाल में जीव ने कभी की नहीं, वह सत्क्रिया आचार्यदेव इस शास्त्र में बतायेंगे।

कुन्दकुन्द भगवान ने यह शास्त्र बनाया है। वे महाविदेह में सीमंधर परमात्मा के पास गये थे और वहाँ आठ दिन रहकर इस भरतक्षेत्र में वापस पधारे थे। तब उन्होंने इस शास्त्र की रचना की है। इसमें सत्क्रियाओं का वर्णन किया गया है। बाहर की सत्क्रियायें नहीं, किन्तु अन्तर में ज्ञानानन्दस्वरूप में रमणता करने पर राग टूट जाय उसका नाम प्रत्याख्यान की सत्क्रिया है।

प्रथम चैतन्यस्वरूप आत्मा का भान करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना सत्क्रिया है। उसके बाद निश्चय प्रत्याख्यान-भक्ति आदि की सत्क्रिया कैसी होती है, उसका इसमें वर्णन है। जिसको स्वभाव का भान नहीं वह तो नाम से जैन है। चैतन्य का जैसा स्वभाव है, वैसा पहचान कर मोह को जीते वही सच्चा जैन है।

आचार्यदेव ने पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व और नव पदार्थों का वर्णन किया है। उनको जो न जाने उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता। जीव को जीव, अजीव को अजीव, पुण्य को पुण्य, पाप को पाप और संवर को संवर माने; जो इसप्रकार नव तत्त्वों को भिन्न-भिन्न न माने और अजीव की क्रिया जीव करता है - ऐसा माने, पुण्य से धर्म होता है ऐसा माने, तो उसने नव तत्त्वों को वास्तव में माना नहीं और उसके प्रत्याख्यानादि धर्मक्रिया होती नहीं।

प्रथम नव तत्त्व को पहचान कर चैतन्यस्वभाव को पहचाने। पश्चात् अन्दर में एकाग्रता करने पर राग टल जाय उसका नाम प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया है। शरीर की क्रिया तो जड़ की क्रिया है, पुण्य की क्रिया वह असत्क्रिया है। चिदानन्दस्वभावी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप क्रिया वह सत्क्रिया है। उसका वर्णन इस शास्त्र में आयेगा। इस

वीतरागी क्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई क्रिया मोक्ष का कारण नहीं है।

अतिविस्तार से बस होओ, बस होओ। साक्षात् यह विवरण जयवन्त वर्तो।

यहाँ श्रीमद्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित गाथा सूत्र का अवतरण होता है -

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।1।।

अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञानदर्शन जिनका स्वभाव है, ऐसे केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जिनवीर को नमन करके केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ नियमसार मैं कहूँगा।

श्री वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस प्रथम सूत्र में असाधारण मंगलाचरण किया है। वे कहते हैं कि जो केवली और श्रुतकेवलियों ने कहा है - ऐसे श्री नियमसार को मैं कहूँगा।

सर्वज्ञ को पहिचानकर उनको नमस्कार करते हैं। अनन्त और उत्कृष्ट जिनका स्वभाव है, वे सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ ने जिस प्रमाण में विश्व को जाना, उसी प्रमाण में जगत में परिणमन होता है, उसमें फेरफार नहीं पड़ता।

सर्वज्ञ का ज्ञान तो अनन्त और उत्कृष्ट है। दूसरे मति-श्रुत इत्यादि ज्ञान में अनन्तता कही जाती है; किन्तु वह उत्कृष्ट नहीं है। उत्कृष्ट ज्ञान तो केवलज्ञान है। ऐसे केवलज्ञानी जिनवीर को नमस्कार करके मैं इस नियमसार को कहूँगा।

मैं सर्वज्ञ को नमस्कार करता हूँ। मेरे में अल्पज्ञता है, उसका मैं आदर नहीं करता; किन्तु मेरे में जो सर्वज्ञता प्रगट होने की शक्ति है, उसी का आदर करता हूँ। विकल्प उत्पन्न हुआ है; इसलिए निमित्तरूप से सर्वज्ञ को नमस्कार किया है। तदुपरान्त नियमसार को अर्थात् शुद्ध आत्मा को और मोक्षमार्ग को कहूँगा।

आचार्य स्वयं सीमंधर भगवान के पास गये थे और वहाँ केवली और श्रुतकेवलियों के पास से सीधा सुना था। इसीलिए कहते हैं कि केवली और श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ नियमसार कहूँगा। श्री कुन्दकुन्दाचार्य अन्तर अनुभव में झूलनेवाले महान संत थे। वे महाविदेह क्षेत्र में विराजमान श्री सीमंधर भगवान के पास लगभग दो हजार वर्ष पूर्व (विक्रम संवत् 49 में) गये थे। यह बात परम सत्य है। **(क्रमशः)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है&

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

आचार्यदेव ने तो कहा है कि - यदि तू अजीव को अपना मानकर उस अजीव का स्वामी बनेगा तो तू अजीव हो जायेगा अर्थात् तेरी श्रद्धा में जीवतत्त्व नहीं रहेगा। इसलिए हे भाई ! यदि तू अपनी श्रद्धा में अपने जीवतत्त्व को जीवित रखना चाहता हो तो अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानकर उसी का स्वामी बन और अन्य का स्वामित्व छोड़।

प्रश्न - मुनियों ने तो धन-मकान-स्त्राी-वस्त्राादि का त्याग कर दिया है; इसलिए वे तो उनके स्वामी नहीं हैं; किन्तु हम गृहस्थों के तो वह सब होता है; इसलिए हम तो उसके स्वामी हैं न ?

उत्तर - अरे भाई ! क्या मुनि का और तेरा (गृहस्थ का) आत्मा भिन्न-भिन्न प्रकार का है ? यहाँ आत्मा के स्वभाव की बात है; जगत का कोई भी आत्मा परद्रव्य का स्वामी तो है ही नहीं। सिद्ध भगवान या संसारी मूढ़ प्राणी; केवली भगवान या अज्ञानी; मुनि या गृहस्थ - किसी का भी आत्मा परद्रव्य का स्वामी नहीं है। अब, चूँकि मुनियों को तो स्त्राी-वस्त्राादि का राग छूट गया है और तुझे वह राग नहीं छूटा; इसलिए पहले निर्णय तो कर कि राग होने पर भी आत्मा का स्वभाव ज्ञायकमूर्ति है; राग का स्वामित्व मेरे ज्ञायकस्वभाव में नहीं है। धर्मी को राग होने पर भी उनके अभिप्राय में ''राग सो मैं'' - ऐसी राग की पकड़ नहीं होती है। चैतन्यस्वभाव को चूककर देहादि पर का स्वामित्व मानना वह तो मिथ्यात्व है ही और शुभाशुभ परिणामों का स्वामित्व भी मिथ्यात्व ही है।

प्रश्न - शुभाशुभ परिणामों का स्वामी आत्मा नहीं है तो कौन है ?

उत्तर - शुभाशुभ परिणाम आत्मा की पर्याय में होते हैं, उस अपेक्षा से तो आत्मा ही उनका स्वामी है; परन्तु यहाँ तो आत्मा के स्वभाव का, आत्मा की शक्ति का वर्णन चल रहा है। शुभाशुभ परिणाम आत्मा का स्वभाव नहीं है; आत्मा तो ज्ञायकस्वभावी है; उस ज्ञायकस्वभाव की दृष्टिवाले धर्मात्मा शुभाशुभ परिणाम के स्वामी नहीं होते। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से जो सम्यग्दर्शनादि वीतरागी परिणाम हुए उन्हीं के स्वामी होते हैं। अज्ञानी को ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि नहीं है; इसलिए वही शुभाशुभ परिणाम का स्वामी होकर उनमें एकत्वबुद्धिरूप, मिथ्यात्वरूप परिणमित होता है।

धर्मी जानता है कि मैं तो अपने ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुणों का स्वामी हूँ और वे ही मेरे स्वभाव हैं। मेरा स्वरूप ऐसा नहीं है कि ''मैं विकार का स्वामी होऊँ।'' विकार का स्वामी तो विकार होता है, मेरा शुद्धभाव विकार का स्वामी कैसे होगा ? मेरे ज्ञायकस्वभाव के साथ एकत्व हुआ जो निर्मल भाव है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वही मेरा स्व है और मैं उसका स्वामी हूँ। अपने इस स्व-धन को मैं कभी नहीं छोड़ता। जो मेरा स्व हो वह मुझसे पृथक् कैसे होगा ? स्वभाव में एकाग्र होने पर रागादि तो मुझसे पृथक् हो जाते हैं; इसलिए वे मेरे स्व नहीं हैं।

जो जिसे अपना मानता है वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। जो राग को अपना स्व मानता है वह राग को छोड़ना नहीं चाहता; इसलिए वह राग को अपने स्वभाव से पृथक् नहीं जानता; इसलिए वह तो मिथ्यादृष्टि ही है। जो ऐसा जाने कि मैं तो ज्ञायकस्वभाव हूँ, राग मेरे स्वभाव से भिन्न भाव है - ऐसा जानकर ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि भाव प्रगट करे तो फिर उसे जो अल्पराग रहता है, वह अस्थिरताजनित चारित्रा का दोष कहा जाता है। उसे श्रद्धा में तो ज्ञायकभाव का ही स्वामित्व वर्तता है, राग का स्वामित्व नहीं वर्तता; इसलिए श्रद्धा का दोष

छूट गया है; परन्तु जो जीव सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित नहीं होता और पर के तथा राग के ही स्वामित्वरूप से परिणमित होता है उसकी तो श्रद्धा ही मिथ्या है और श्रद्धा का दोष अनन्त संसार का कारण है।

प्रश्न - अरहंत एवं सिद्ध भगवान को प्रभु, स्वामी, नाथ क्यों कहा जाता है, जब वे किसी के स्वामी हैं ही नहीं ?

उत्तर - भगवान की और गुरु की भक्ति में भले ही ऐसा कहा जाता है कि हे नाथ ! हे जिनेन्द्रदेव ! आप ही हमारे स्वामी हैं; किन्तु वास्तव में तो भगवान का आत्मा उनके केवलज्ञान और आनन्द का ही स्वामी है; वह आत्मा कहीं इस आत्मा का स्वामी नहीं है; इस आत्मा के भाव का स्वामी यह आत्मा स्वयं ही है; अन्य कोई इस आत्मा का स्वामी नहीं है। यदि ऐसा न जाने और सचमुच भगवान को ही अपना स्वामी मान ले तो उसने अपने आत्मा को पराधीन माना है, अपनी भांति समस्त आत्माओं को भी पराधीन स्वभावी माना है; इसलिए भगवान के आत्मा को भी उसने पराधीन माना है। उसने न तो भगवान को पहिचाना है और न उनकी भक्ति करना ही जानता है।

भगवान की सच्ची भक्ति करनेवाला जीव तो जो कुछ भगवान ने किया वही स्वयं करना चाहता है। हे भगवान सर्वज्ञदेव ! आपने अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानकर पर का ममत्व छोड़ दिया और परमात्मा बन गये। मेरा आत्मा भी आप जैसा ज्ञायकस्वभावी ही है - इसप्रकार जो जीव भगवान जैसे अपने आत्मा को पहिचाने, वही भगवान का सच्चा भक्त है; उसी ने भगवान को पहिचानकर उनकी भक्ति की है। ऐसी परमार्थ भक्ति सहित भगवान के बहुमान का उल्लास आने पर कहता है कि ''हे नाथ ! आप ही मेरे स्वामी हैं; आपने ही मुझे आत्मा दिया है।' धर्मी ऐसा बोलते हैं, वह कहीं मिथ्यात्व नहीं है; किन्तु यथार्थ विनय का व्यवहार है। धर्मात्मा के अंतर अभिप्राय को न समझकर अकेली भाषा को पकड़े तो वह बाह्यदृष्टि जीव धर्मात्मा को जानता ही नहीं; वह जड़भाषा को तथा शरीर को जानता है; किन्तु ज्ञानी के चैतन्यभाव को नहीं जानता। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की दृष्टि शुभाशुभ के काल में भी ध्रुव पर ही रहती है या भटक जाती है ?

उत्तर : जिसको द्रव्यदृष्टि प्रकट हुई है - ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि सदा ध्रुवतल पर ही रहती है। स्वानुभूति के काल में - ध्यान में, आनन्द के काल में, विकल्प छोड़कर अनुभव के काल में और शुभ-अशुभ में उपयोग हो तब भी दृष्टि तो ध्रुवतल के ऊपर ही होती है। सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती 96 हजार स्त्रीवृन्द में खड़ा हो; तथापि उसकी दृष्टि तो ध्रुवतल में ही रहती है, विकल्प पर नहीं । बाहुबली के साथ भरत का युद्ध हुआ, दोनों सम्यग्दृष्टि थे, दोनों का उपयोग उससमय युद्ध में था; तथापि उनकी दृष्टि उससमय ध्रुवतल से खिसकी नहीं थी। दृष्टि तो सहजपने ध्रुवतल के ऊपर ही थी। शुभशुभ के उपयोग काल में भी दृष्टि ध्रुव पर से हटती नहीं है। श्रेणिक राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे, कारागार में माथा फोड़कर मरे थे; तथापि उस काल में भी ध्रुवतल के ऊपर से उनकी दृष्टि छूटी नहीं थी। द्रव्यदृष्टि की महिमा अपार है।

प्रश्न : ज्ञानी को भी शुभराग आता है तो क्या वह शुद्धात्मा को भूल जाता है ?

उत्तर : मुमुक्षु जीव शुभराग में जुड़ान करता है; किन्तु शुद्धात्मा की शोधकवृत्ति का अभाव नहीं होता। मुमुक्षु जीव को दया-दान-पूजा-भक्ति आदि के शुभभाव आते अवश्य हैं; परन्तु उसकी वृत्ति और झुकाव शुद्धात्म की तरफ ही रहता है, शुभभाव में तल्लीनता नहीं होती। ज्ञानी के जिनस्वरूपी भगवान आत्मा की शोधकवृत्ति नहीं जाती तथा शुद्धात्मारूप ध्येय छोड़कर शुभराग का आग्रह नहीं रहता। शुभराग से लाभ होगा - ऐसा नहीं मानता। पर्याय की अशुद्धता भी नहीं भूलता और स्वच्छन्द भी नहीं होता।

प्रश्न : शुभराग को ज्ञानी हेय मानता है, तो फिर षोडशकारण भावनाओं को क्यों भाता है ?

उत्तर : ज्ञानी षोडशकारण भावनाओं को भाता नहीं है; परन्तु उसे उसप्रकार का राग आ जाता है। वास्तव में ज्ञानी को भावना तो स्वरूप में स्थिर होने की ही होती है; परन्तु जब पुरुषार्थहीनता से स्वरूप में ठहर नहीं पाता, तब हेयबुद्धि से शुभराग आ जाता है। विचारपूर्वक देखा जाय तो ज्ञानी उन भावनाओं का जाननेवाला ही है - कर्ता नहीं।

प्रश्न : ज्ञानी परवस्तु अथवा राग में फेरफार करने की बुद्धि नहीं रखता – यह तो ठीक; किन्तु अपनी निर्मल पर्याय को तो करना चाहता है ?

उत्तर : ज्ञानी को अपनी निर्मल पर्याय को फेरने के ऊपर भी लक्ष्य नहीं है। द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होने पर पर्याय स्वयं निर्मलपने फिर जाती है। धर्मी पर को – शरीर की क्रिया को फेरता नहीं, विकल्प को फेरता नहीं और जिस समय जो पर्याय होती है, उसे भी फेरने की बुद्धि नहीं अर्थात् उसके तो पर्याय के ऊपर की दृष्टि ही छूट गई है। मात्र वस्तुस्वभाव के सन्मुख बुद्धि होने पर राग टलकर वीतरागरूप में पर्याय पलट जाती है। कुछ भी फेरफार नहीं करना है। वस्तुस्वभाव को जैसा का तैसा रखकर स्वयं स्वभावदृष्टि से निर्मलरूप में पलट जाता है। इसके अतिरिक्त पदार्थों में अथवा अपनी अवस्था में कुछ भी फेरफार करने की बुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न : धर्मी साधकजीव राग का वेदक है या ज्ञाता है ?

उत्तर : साधकजीव का ज्ञान राग में जाता है, उस दु:ख को वेदता है तथा ज्ञान ज्ञान में रहता है, उस सुख को भी वेदता है।

प्रश्न : ज्ञानी दु:ख का ज्ञायक है या वेदक है ?

उत्तर : ज्ञानी को दु:ख जानने में भी आता है और वेदन भी होता है। जैसे आनन्द का वेदन है; उसीप्रकार जितना दु:ख है, उतना दु:ख का वेदन भी है।

प्रश्न : क्या सम्यग्दृष्टि भी सर्वज्ञ की तरह राग को मात्र जानता ही है ?

उत्तर : जिसप्रकार सर्वज्ञ को लोकालोक ज्ञेय है, लोकालोक को सर्वज्ञ जानते हैं; उसीप्रकार जिसने सर्वज्ञस्वभावी को दृष्टि में लिया है – ऐसा सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञ के समान राग को जानता ही है। सर्वज्ञ को जानने में लोकालोक निमित्त है; उसीतरह सम्यग्दृष्टि को जानने में राग निमित्त है। सम्यग्दृष्टि राग को करता नहीं है; किन्तु लोकालोक के ज्ञाता सर्वज्ञ की तरह वह राग को जानता ही है। ऐसी वस्तुस्थिति है और ऐसे ही अन्दर से आती है और वैठती है। यह बात तीनकाल तीनलोक में बदल जाय – ऐसी नहीं है। अन्य किसी भी प्रकार से वस्तु की सिद्धि हो सकती नहीं। यह तो अन्दर से ही आई हुई वस्तुस्थिति है।

प्रश्न : ज्ञानी को तो दु:ख का वेदन होता ही नहीं है न ?

उत्तर : ज्ञानी को भी जितना राग है, उतना दु:ख है तथा जितना कषाय है, उतना दु:ख का वेदन भी है। शास्त्र में जो यह कहा है कि ज्ञानी को दु:ख का वेदन नहीं है, वह तो श्रद्धा के जोर की – बल की अपेक्षा से कहा है। एक तरफ तो ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में बन्धन है ही नहीं और फिर ऐसा भी कहते हैं कि चौदहवें गुणस्थान तक संसारी है। भाई ! जहाँ जिस अपेक्षा से शास्त्र में कथन किया गया हो, उसे उसी अपेक्षा से समझना चाहिए।

समाचार दर्शन –

बाल शिक्षण-शिविर सम्पन्न

इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट द्वारा पंचबालयति एवं विहरमान 20 तीर्थंकर जिनालय, साधनानगर में दिनांक 1 जून से 8 जून तक जैनत्व बाल संस्कार शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर प्रतिदिन प्रात: पण्डित बाबूभाई फतेहपुर एवं पण्डित राजकुमारजी शास्त्री के प्रवचन हुये। सायंकाल पहला प्रवचन पण्डित अजितकुमारजी शास्त्री अलवर व पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा का तथा द्वितीय प्रवचन पण्डित बाबूभाई मेहता फतेपुर व ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद का हुआ।

शिविर में पण्डित अशोकजी मांगुलकर, पण्डित रितेशजी शास्त्री सनावद, पण्डित ऋषिराजजी शास्त्री, पण्डित राजीवजी शास्त्री, पण्डित प्रयंकजी शास्त्री, पण्डित जिनेशजी, पण्डित अनुजजी, पण्डित अमितजी, श्रीमती आशाजी एवं श्रीमती ममताजी द्वारा बालबोध पाठमाला भाग-1, 2, 3 एवं वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग- 1, 2 की कक्षा ली गई।

ज्ञातव्य है कि शिविर में 550 विद्यार्थियों ने भाग लिया, जिन्हें विभिन्न स्थानों पर 10 कक्षाओं में विभाजित करके पढ़ाया गया।

बाल कक्षाओं के अतिरिक्त युवाओं के लिये लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका की कक्षा पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा द्वारा ली गई।

ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री मनोहरलालजी काला एवं महामंत्री श्री अशोकजी बड़जात्या ने ट्रस्ट की गतिविधियों की जानकारी दी। शिविर के प्रमुख संयोजक श्री विजयजी बड़जात्या ने शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत की। आभार प्रदर्शन श्री राजेन्द्रजी पहाड़िया ने किया। **– पूनमचन्द छाबड़ा**

उत्तर कर्नाटक में धर्मप्रभावना

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित राजेन्द्रजी पाटील (यलिमुन्नोलि) एवं वर्तमान छात्र पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री (उगार) ने कर्नाटक प्रान्त के कुसनाल, शिरगुप्पी, नंदगांव, यलिमुन्नोलि, उगार, गुलबर्गा, आलन्द, तेलेकुणी एवं शिरोल (वा) – गांवों में लगातार एक महिने प्रवचन, प्रौढ़कक्षा, बालकक्षा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराकर अभूतपूर्व धर्म प्रभावना की। इन समस्त गांवों में लगभग 500 से भी अधिक बालक-बालिकाओं एवं मुमुक्षुओं ने लाभ लिया।

समाज के सभी लोगों ने आगामी दशलक्षण पर्व में विद्वानों को बुलाने के लिए आमंत्रण दिया एवं ग्रीष्मकालीन अवकाश में शिविर लगाने का आग्रह व्यक्त किया। साथ ही समाज के लोगों ने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

वैराग्य समाचार

1. लन्दन निवासी श्री भगवानजी कचराभाई शाह के बड़े सुपुत्र **सोमचन्दभाई शाह** का 76 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया है। श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की समस्त गतिविधियों में आपका एवं आपके परिवार का सदैव महत्त्वपूर्ण सहयोग रहता था। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय तो आप सपरिवार जयपुर आये ही थे इसके बाद भी आप अनेक बार स्मारक भवन पधारे। साहित्य के प्रचार-प्रसार की आपकी तीव्र भावना रहती थी। आप उसके लिये सदैव प्रयासरत भी थे।

2. पिड़ावा निवासी वयोवृद्ध विद्वान पण्डित तेजमलजी जैन का दिनांक 13 जून 2003 को 81 वर्ष की आयु में समाधिमरणपूर्वक देहावसान हो गया है। आप तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों से जीवनभर जुड़े रहे तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित समस्त कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग देते रहे। आपके निधन से समाज को अपूरणीय क्षति हुई है।

आपने अपने परिवार को भी गहरे धार्मिक संस्कार दिये। इसी का प्रतिफल है कि आपके सुपुत्र कमलचन्दजी तथा सुपौत्र मनीषजी शास्त्री पिड़ावा भी वर्तमान में तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में संलग्न हैं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - यही मंगल कामना है।

श्रुतपंचमी पर्व सानन्द सम्पन्न

खतौली (मु.नगर) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन मंदिर पीसनोपाड़ा में श्रुतपंचमी पर्व के अवसर पर दिनांक 3 से 5 जून तक तीन लोक मण्डल विधान का भव्य आयोजन किया गया।

प्रतिदिन प्रात: विधान के मध्य मुनि 108 श्री सम्यक्त्वभूषणजी महाराज का मांगलिक प्रवचन हुआ। दोपहर में पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर ने पंच परावर्तन विषय पर कक्षा ली। सायंकाल प्रथम प्रवचन पण्डित अभिनवजी मोदी मैनपुरी तथा द्वितीय प्रवचन पण्डित संजीवजी गोधा का हुआ।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित सोनूजी शास्त्री एवं पण्डित अभिनवजी शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराये गये। रात्रि में पाठशाला के बच्चों द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। सभी कार्यक्रमों में श्री कल्पेन्द्रजी का सराहनीय सहयोग रहा। **- अशोककुमार जैन**

आगामी वर्ष के शिविरों की तिथियाँ निश्चित

* **प्रशिक्षण शिविर** - रविवार, 9 मई 2004 से बुधवार 26 मई 2004 तक।
* **शिक्षण-शिविर** - रविवार, 1 अगस्त 2004 से 10 अगस्त 2004 तक जयपुर में।
* **शिक्षण-शिविर** - रविवार, 17 अक्टूबर 2004 से 26 अक्टूबर 2004 तक जयपुर में।

चल शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द नैतिक शिक्षा समिति द्वारा आयोजित चल शिक्षण शिविर के अन्तर्गत 8 जून से 14 जून 2003 तक विभिन्न स्थानों पर धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। इसके अन्तर्गत **कोटला में -** पण्डित अनन्तवीर जैन शास्त्री फिरोजाबाद, **कुरावली में -** पण्डित संतोषजी शास्त्री बोगार एवं पण्डित अनुरागजी जैन फिरोजाबाद, **शिकोहाबाद में -** पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर एवं पण्डित अरहंतवीर जैन फिरोजाबाद तथा **कुर्राचित्तरपुर में -** पण्डित अश्विनकुमारजी शास्त्री नौगामा द्वारा प्रवचन, कक्षायें एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये, जिसका अनेक बालक-बालिकाओं एवं मुमुक्षों ने लाभ लिया। **- नवीन जैन**

बाल शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

जयपुर : यहाँ श्री महावीर दिगम्बर जैन सीनियर हा.सै. स्कूल, सी-स्कीम में कक्षा 6 से 8 के बालकों को नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देने हेतु श्रीमती कौशल्यादेवी जैन मैमोरियल मोरल एज्यूकेशन फण्ड के सौजन्य से 2 से 8 जुलाई 2003 तक एक बाल शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

शिविर का उद्घाटन 2 जुलाई को स्कूल प्रांगण में मुख्य सचिव एम. एल. मेहता ने किया।

शिविर में पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री, पण्डित अमोलजी संघई, पण्डित परेशजी शास्त्री, पण्डित संतोषजी मिन्चे, पण्डित विशाल सर्राफ एवं पण्डित अभिषेक सिलवानी द्वारा वीतराग-विज्ञान भाग-1, 2 व 3 के माध्यम से बालकों को नैतिक जीवन का ज्ञान कराया गया।

शिविर में शिक्षण कक्षाओं के पूर्व प्रतिदिन क्रमश: श्री एम. एल. मेहता, प्रो. रमेशजी अरोड़ा, डॉ. पी. डी. शर्मा, डॉ. प्रेमचन्दजी रावका, डॉ. निरंजनलालजी मिश्र एवं श्री तेजकरणजी डंडिया ने बालकों को नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देकर अपने व्यक्तित्व का विकास करने की प्रेरणा दी।

अन्तिम दिन समापन समारोह की अध्यक्षता शिक्षाविद् माननीय श्री तेजकरणजी डंडिया ने की। कार्यक्रम में प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान प्राप्त छात्रों के साथ सभी बच्चों को पुरस्कृत किया गया।

अन्त में शिविर प्रभारी श्रीमती रमा जैन ने शिविर की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला।

प्रवचनसार : अनुशीलन के संबंध में पाठकों के पत्र

वीतराग-विज्ञान के पूर्व प्रबन्ध सम्पादक **पण्डित अनुभवप्रकाशजी शास्त्री**, कानपुर लिखते हैं कि -

''पूजनीय छोटे दादाजी आपके द्वारा वीतराग-विज्ञान में सम्पादकीय के रूप में प्रारंभ किया गया प्रवचनसार अनुशीलन देखकर अतीव प्रसन्नता हुई। आपकी ये अनुशीलनात्मक रचनायें वर्तमान में तो बेजोड़ हैं ही, आगे भी भगवान सर्वज्ञ की वाणी के हार्द को खोलने में परम उद्घाटक साबित होगी। मेरे ऊपर तो आपका उपकार अनन्त है, आपसे क्षेत्रीय जुदाई से आपकी महिमा और भी बढ़ गई है।''

डाक टिकिट भेजकर सत्साहित्य नि:शुल्क मंगा लें

अध्यात्मजगत के आध्यात्मिकसत्पुरुष कानजी स्वामी के प्रवचनों की श्रृंखला में आचार्य कुन्दकुन्द कृत ग्रंथाधिराज समयसार (गाथा 373 से 415) पर हुए प्रवचनों का संकलन **प्रवचनरत्नाकर भाग-10** (पृष्ठ- 258, कीमत 20/- रुपये) तथा पं. नेमीचन्दजी पाटनी द्वारा लिखित पुस्तक **भेदविज्ञान का यथार्थ प्रयोग** (पृष्ठ 28, कीमत 3/- रुपये) का साहित्य सैट श्री मगनमल सौभागमल पाटनी फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, मुंबई की ओर से मुनिराजों, ब्रह्मचारियों, मंदिरों, संस्थाओं एवं मुमुक्षुओं को स्वाध्यायार्थ नि:शुल्क भेंटस्वरूप भेजा जा रहा है।

इच्छुक महानुभाव डाकखर्च के लिए 5/- रुपये के फ्रेश डाक टिकिट भेजकर मँगा लेवें। डाक टिकिट भेजने की अंतिम तिथि 31 अगस्त, 2003 है।

- प्रबन्धक, नि:शुल्क साहित्य वितरण विभाग
श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4 बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)

दशलक्षण पर्व हेतु आमंत्रण-पत्र शीघ्र भेजें

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के पास दशलक्षण पर्व के पावन अवसर पर प्रवचनकार विद्वान भेजने हेतु प्रतिवर्ष सैंकड़ों पत्र प्राप्त होते हैं; समय पर आमंत्रण पत्र प्राप्त होने से हमें विद्वानों की उचित व्यवस्था करना संभव हो पाता है। अत: अपने आमंत्रण 5 अगस्त 2003 तक अवश्य ही भेज देवें। इसके बाद आनेवाले पत्रों पर विचार करने में असमर्थता होगी। पते में फोन व एस. टी. डी. कोड व पिन कोड नम्बर लिखना न भूलें।

- मंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

छब्बीसवाँ बृहद् आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

रविवार, 27 जुलाई 2003 से मंगलवार, 5 अगस्त 2003 तक

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में रविवार, 27 जुलाई से मंगलवार, 5 अगस्त 2003 तक बृहद् आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

शिविर में आध्यात्मिक प्रवक्ता बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल', डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन बेलगांव, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित शैलेषभाई तलोद, डॉ. कपूरचन्दजी 'कौशल' भोपाल, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री इत्यादि अनेक विद्वानों का प्रवचन एवं कक्षाओं के माध्यम से लाभ मिलेगा।

सम्पूर्ण कार्यक्रम ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा एवं श्री अमृतभाई मेहता के कुशल निर्देशन में सम्पन्न होंगे।